स्कूली शिक्षा : एक नई दृष्टि

डेविड ऑसबरॉ के साथ रोजलिंड विल्सन की बातचीत

अनुवाद : देवयानी

इस साक्षात्कार के साथ प्रकाशन के समय 'इंडिया इंटरनेशनल सेन्टर क्वार्टरली' (वाल्यूम 10, नंबर 1, 1983) पत्रिका के संपादक की यह टिप्पणी छपी थी : ''बच्चों की पुस्तक के लेखक के रूप में डेविड ऑसबरॉ का नाम सुपरिचित है । भारत में ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस द्वारा प्रकाशित उनकी पुस्तकें गणित से लेकर पर्यावरण तक तमाम विषयों से संबंधित हैं। ऑसबरॉ ने कई वर्ष कृष्णमूर्ति के ऋषिवैली स्कूल में शिक्षण कार्य किया, बाद में ब्रिटिश काउंसिल की सेवा में रहे । और अन्ततः उन्होंने बंगलौर के निकट एक छोटे से गांव में स्वयं अपना स्कूल शुरू करने का फैसला कर लिया ।
स्कूल में इस समय दो साल से 21 साल तक की उम्र के 27 छात्र हैं । सामान्य रूप से प्रचलित क्लास रूम प्रणाली का सहारा नहीं लिया जाता है क्योंकि सभी छात्र यहां एक साथ बैठते हैं । परीक्षा प्रणाली का अस्तित्व ही नहीं है। स्कूल में प्रत्येक बच्चा अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार चीजों को जानता और सीखता है। सीखना यहां शिक्षक तथा छात्र दोनों के लिए एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है ।
इसके क्या नतीजे रहे ? जब डेविड ऑसबरॉ इंडिया इंटरनेशनल सेन्टर में ठहरे हुए थे तो हम उन से यह विशेष बातचीत आयोजित कर पाये । साक्षात्कारकर्ता हैं बच्चों की पत्रिका 'टारगेट' की संपादक रोजलिंड विल्सन ।''

रोजलिंड : *डेविड, आप ब्रिटिश काउंसिल अधिकारी रहे हैं, बाद में एक मान्य शिक्षक एवं लेखक के रूप में लम्बे समय से भारत में रह रहे हैं, आपको नीलबाग स्कूल शुरू करने के लिए किस चीज ने प्रभावित किया ?*

डेविड : मुझे लगता है कि यह मेरी भारत की पहली यात्रा ही थी। मैं पहली बार दूसरे विश्वयुद्ध के दौरान 1943 में रायल एअर फोर्स के तहत भारत आया था। तब मैं बांग्लादेश के चिटगांव इलाके में पदस्थापित था, जो उन दिनों भारत का ही एक हिस्सा था । उन दिनों मैं अपना अवकाश का कुछ समय चिटगांव से बीस मील दक्षिण में एक छोटे से टापूनुमा गांव में बिताया करता जिसमें धान के खेतों के बीच सिर्फ दो परिवार रहते थे, एक हिन्दू और एक मुसलमान । सड़कें नहीं थीं, सिर्फ जल मार्ग ही थे । ... मैंने उस गांव का स्कूल देखा तो मुझे महसूस हुआ कि हां, यही वह काम है जो मैं जीवन में करना चाहता हूँ, किसी गांव के स्कूल में पढ़ाना।

और फिर, युद्ध के बाद मैं इंग्लैण्ड लौट गया । वहां मैने डिग्री ली और 1950 में फिर भारत आ गया और सच तो यह है कि शुरुआत मैंने दूसरे छोर से की । मैंने मैसूर में अंग्रेजी के प्रोफेसर के तौर पर पढ़ाना शुरू किया, फिर कुछ वर्षों तक ऋषिवैली में जाकर शिक्षण किया। 1959 में मैंने ब्रिटिश काउंसिल में नौकरी कर ली और 1972 में अपना स्कूल शुरू करने के लिए मैं उससे अलग हो गया । इस सारे समय मैं किसी न किसी रूप में शिक्षण से जुड़ा रहा और यह मेरी खुशकिस्मती रही कि मुझे पूर्व-प्राथमिक से लेकर स्नातकोत्तर तक सभी स्तरों को पढ़ाने का अवसर मिला ।

रोजलिंड : *आपके ये अनुभव आपके स्कूल में प्रतिबिम्बित हुए ?*

डेविड : हां, मेरा विचार मूलतः ग्रामीण विद्यालय का था । लेकिन इस पर सभी तरह के प्रभाव देखे जा सकते हैं, इवान इलिच से लेकर ए. एस. नील तक । मैं एक ऐसा स्कूल चाहता था जो मौजूदा स्कूलों से बिल्कुल हटकर हो ।

रोजलिंड : *कदाचित इसलिए कि आप के विचार से मौजूदा स्कूल ठीक ढंग से नहीं चल पा रहे थे ?*

डेविड : हां, एक हद तक मैं यह कह सकता हूं कि वे ठीक ढंग से काम नहीं कर रहे हैं ।

रोजलिंड : *तो जब आपने नीलबाग शुरू किया, आपको क्या लगता था कि इसकी कौनसी बात बच्चों को आकर्षित करेगी?*

डेविड : सबसे पहले आपको वह बात ध्यान में रखनी होगी, जो नील ने कही थी कि सभी स्कूल जेल होते हैं और बच्चे वहां जाने को विवश होते हैं । तो, मैं एक ऐसा स्कूल चाहता था जहां बच्चों को 'जाएं या न जाएं' जैसे सवालों पर सोचने की जरूरत न पड़े । जहां वे जाने, न जाने, आने, न आने का फैसला अपने मन से कर सकें । इसके लिए विवश न किए जाएं । मैं एक ऐसा स्कूल भी चाहता था जिसमें सजा नाम की कोई चीज न हो ।

रोजलिंड : *यह तो ए. एस. नील जैसी ही बात लगती है ?*

डेविड : हां । हालांकि बहुत सारे मुद्दों पर मेरी ए.एस. नील से जबरदस्त असहमति भी है । जाहिर है, जहां आप कोई सजा नहीं चाहते, वहां आप कोई नियम भी नहीं रख पायेंगे क्योंकि जैसे ही आप कोई नियम लागू करना चाहेंगे, उन पर अमल कराने के लिए अंतत: आपको किसी न किसी किस्म का दबाव भी डालना होगा और आखिरकार आप कहेंगे कि यदि आप हमारी जीवनशैली में स्वयं को नहीं ढाल सकते तो मुझे अफसोस है, आप हमारे साथ नहीं रह सकते।

इसके बाद मैंने पाया कि सभी स्कूलों का पाठ्यक्रम बहुत दोषपूर्ण है । बच्चे जब अपनी रचनात्मक ऊर्जा के चरम पर होते हैं, बारह-तेरह साल की उस उम्र में, परीक्षा के दबाव में उन्हें रचनात्मकता के उन रास्तों को बंद करना पड़ता है - क्योंकि परीक्षा को बहुत अनिवार्य माना जाता है । और तब मैंने तय किया कि मैं परीक्षा का कोई दबाव नहीं बनाऊंगा। आज स्कूल को चलते दस साल हो गए, हमने कभी कोई परीक्षा नहीं ली ।

मेरा मानना है कि बच्चों के स्कूल छोड़ जाने या अनुत्तीर्ण रहने का एक प्रमुख कारण कक्षाओं का विभाजन है। तो हमने कोई स्तर अथवा कक्षाएं नहीं बनाईं । इसका फायदा यह है कि बच्चों को अपनी क्षमता के अनुरूप विकसित होने का अवसर मिलता है । अपनी गति के अनुरूप आगे बढ़ने का ।

रोजलिंड : *तब तो आपको बच्चों के अनुपात में शिक्षकों की संख्या काफी ज्यादा रखनी पड़ती होगी ?*

डेविड : मुझे ऐसा नहीं लगता। मैं अकेला पच्चीस छात्रों तक की एक कक्षा को अंग्रेजी पढ़ा सकता हूँ । लेकिन निश्चय ही अधिकांश ग्रामीण विद्यालयों की तुलना में हमारा छात्र-शिक्षक अनुपात बहुत कम है ।

रोजलिंड : *हूं, लेकिन ऐसी हालत में आपके यहां पढ़ाई का स्तर भी तो उनसे बेहतर होना चाहिए कि नहीं ?*

डेविड : शिक्षक के बारे में मेरी अवधारणा बहुत भिन्न किस्म की है । एक शिक्षक का काम पढ़ाना नहीं बल्कि ऐसा वातावरण तैयार करना है जिसमें प्रत्येक बच्चा अपने स्तर पर चीजों को सीख सके । जैसे लोग मुझसे कहते हैं 'देखो दोस्त, अगर तुम राजनीति के बारे में कुछ भी नहीं जानते तो तुम विश्वविद्यालय में राजनीति कैसे पढ़ा सकते हो?' लेकिन मेरा काम किसी को कुछ सिखाना या पढ़ाना नहीं है । सामान्यत: हम एक शिक्षक की कल्पना एक ऐसे व्यक्ति के रूप में करते हैं जो बहुत कुछ जानता है और उसे दूसरों तक पहुंचाने का काम करता है । जैसे कि आप देखते हैं कि राजनीति विज्ञान में डिग्री प्राप्त एक व्यक्ति राजनीति विज्ञान पढ़ाता है या साहित्य में एम.ए. करने वाला व्यक्ति साहित्य पढ़ाता है या इतिहास का डिग्रीधारी शिक्षक इतिहास पढ़ाएगा । मैंने ऐसे किसी विषय में कोई डिग्री प्राप्त नहीं की है । मूल बात है बच्चों को सीखने की प्रक्रिया में शरीक करना, उन्हें पढ़ाना नहीं ।

रोजलिंड : *एक बार फिर आपके स्कूल की स्थापना की ओर लौटते हैं । आपने तय किया कि स्कूल में कोई नियम नहीं होगा, किसी को सजा नहीं दी जाएगी और बच्चे अपनी इच्छा से आने या जाने के लिए स्वतंत्र होंगे । ऐसे में बच्चे स्कूल आएं इसके पीछे कोई बहुत प्रबल निमित्त या प्रेरणा होनी चाहिए । आपके स्कूल में क्या सिखाया जाएगा और उसके लिए क्या तरीके या उपकरण काम में लिए जाएंगे, इस बारे में आपको बहुत सोच-विचार की जरूरत पड़ी होगी?*

डेविड : हां, इसके लिए बहुत प्रबल प्रेरणा की जरूरत थी । मैंने इस बारे में बहुत सोचा कि वह क्या है जो बच्चों को सीखने के लिए प्रेरित करता है । मूलत: सबसे जरूरी बात है बच्चों में सीखने की ललक पैदा होना, उसके बाद वे स्वत: सीखने-पढ़ने लगेंगे । हमारे स्कूल में प्रतिस्पर्धा का कोई स्थान नहीं, हम अंक, ग्रेड या प्रमोशन नहीं देते, हमारे यहां सजा का प्रावधान नहीं, बिल्ले या इनाम नहीं दिए जाते । इस सबसे स्पष्ट हो जाता है कि हमारे यहां बच्चों

को प्रोत्साहित करने के भी एकदम नए तरीके अपनाए जाते हैं । मुझे लगता है कि जब बच्चे अपनी कोशिश में सफल होते हैं तो वही उनके लिए सबसे बड़ा प्रोत्साहन होता है और मेरी प्रणाली में, जिसमें कोई स्तर, कक्षा या ग्रेड की व्यवस्था नहीं है, प्रत्येक बच्चा अपनी गति से सफलता प्राप्त कर सकता है । और चूंकि वह सफल होता है, यही बात उसे आगे लगातार सीखते-जानते रहने को प्रेरित करती है ।

अब अगर आपके सामने पैंतीस बच्चों का समूह है और एक शिक्षक को उन्हें पढ़ाना है तो उसे एक निश्चित गति बनाए रखनी होगी जो कक्षा के साठ से सत्तर प्रतिशत बच्चों के अनुकूल हो । यह रफ्तार कुछ बच्चों के लिए बहुत तेज हो सकती है तो कुछ कुशाग्र बच्चों को बहुत धीमी भी लग सकती है । ऐसे में दोनों छोर पर जो बालक हैं वे विमुख होने लगते हैं, जैसे कि मंद चलने वाले बच्चे कुछ सीख नहीं पाते । वहीं कुशाग्र बच्चे हताश होने लगते हैं कि शिक्षक उन्ही बातों को दोहरा रहे हैं जिन्हें वे पहले से जानते हैं । हमारी प्रणाली में एक कुशाग्र बच्चा चाहे तो चार साल की सामग्री एक साल में पढ़ सकता है। हमारे यहां ऐसा ही एक बच्चा है, जिसने अंग्रेजी की चार साल के लिए निर्धारित पुस्तकों को एक साल में ही पढ़ लिया । वहीं कोई दूसरा बच्चा विभिन्न कारणों से किसी चीज को सीखने में कठिनाई अनुभव करता है तो वह एक की बजाय डेढ़ या दो साल में या जितना समय वह चाहे उतना समय लगा कर सीखे । लेकिन धीमी रफ्तार पर सीखने के बावजूद सफलता उसे भी मिलती है। मेरी अवधारणा एक ऐसे स्कूल की है जिसमें सभी को सफलता मिले । इसका यह मतलब नहीं कि कुछ बच्चे ज्यादा कुशाग्र नहीं हो सकते । बेशक, होते हैं ।

रोजलिंड : *लेकिन, आपको प्रोत्साहन का ऐसा कोई आधार दिखाई नहीं देता कि लोगों को व्यावहारिक रूप में शिक्षा का महत्त्व समझ में आए कि यह चीज हमारे तुरंत फायदे की है - और वे उसके प्रति उत्सुक हों ?*

डेविड : बिल्कुल नहीं । बच्चों के साथ तो ऐसा बिल्कुल नहीं किया जाना चाहिए । क्योंकि शिक्षा के बारे में एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि जब तक आप शिक्षित नहीं हो जाते, आप उसके महत्त्व को जान भी नहीं पाते । किसी ग्रामीण को यह बताने से कोई मतलब नहीं कि शिक्षा बहुत जरूरी है। वह इसका महत्त्व सिर्फ इस तरह से समझेगा कि 'अगर मैं दसवीं तक पढ़ लिख लूं तो मैं किसी सरकारी दफ्तर में चपरासी हो सकता हूं,' लेकिन यह तो एक तकनीकी बात हुई, शिक्षा का अभिप्राय सिर्फ इतना ही तो नहीं । कोई भी अशिक्षित व्यक्ति शिक्षा के वास्तविक महत्त्व को जान नहीं सकता।

रोजलिंड : *यानी आप इसे ऐसे काम के रूप में देखते हैं जिसे करने में लुत्फ आए ?*

डेविड : बिल्कुल ! पहला चरण ही यह है कि बच्चों को आनन्द आए और बच्चों को आनन्द आता है । वे बहुत जिज्ञासु होते हैं, उन्हें खेल बहुत पसंद आते हैं और वे खेलने सहित विभिन्न कामों में भरपूर आनन्द लेते हैं । जब वे अपनी क्षमताओं को पहचान लेते हैं तो नए-नए कौशल अर्जित करने की कोशिश करने लग जाते हैं ।

रोजलिंड : *लेकिन, मुझे लगता है कि आपको बच्चों से शारीरिक श्रम करवाने के लिए कुछ तो प्रयास करने ही पड़े होंगे? आपका एक तयशुदा टाइम टेबल है ? आपने कहीं ऐसा भी तो लिखा है कि उन्होंने अपने कक्षा-कक्षों का निर्माण स्वयं किया ?*

डेविड : हां, यह ठीक है कि हमारे यहां एक टाइम टेबल है और अपने आप में काफी गैर-लचीला भी है लेकिन बच्चे कक्षा में आने या न आने के लिए स्वतंत्र हैं । हमारे यहां शारीरिक श्रम वैसे नहीं कराया जाता जैसे गांधीजी की अभिकल्पना थी शारीरिक श्रम की । बेशक बच्चों ने कक्षों का निर्माण किया, पर यह भी उनकी शिक्षा का एक सामान्य हिस्सा था ।

हमारा पाठ्यक्रम बहुत व्यापक है । उनकी मातृभाषा तेलुगु है, इसके साथ दूसरी भाषा के तौर पर वे अंग्रेजी सीखते हैं । वे एक प्रादेशिक भाषा कन्नड़ सीखते हैं । हिंदी और संस्कृत भी सीखते हैं । इनके साथ-साथ उनके विशद् पाठ्यक्रम में गणित, विज्ञान, पर्यावरण शिक्षा, कला, हस्तशिल्प, मिट्टी का काम व लकड़ी का काम भी शामिल है।

रोजलिंड : *पाठ्यक्रम क्या हो, यह आपने कैसे तय किया ?*

डेविड : अपने विवेकानुसार। सभी पाठ्यक्रम बनाने वालों के विवेक की उपज होते हैं । इसे पाठ्यक्रम बनाने वालों का मनमानापन भी कहा जा सकता है। उदाहरण के लिए, हमारे स्कूल में दर्शन पढ़ाया जाता है, क्योंकि मेरे विचार में बच्चों के लिए दर्शन को जानना बेहद उपयोगी हो सकता है । लेकिन संभव है आप ऐसा न मानते हों और मैं यह दावे के साथ कह सकता हूँ भारत के किसी भी अन्य स्कूल के पाठ्यक्रम में दर्शन को शामिल नहीं किया गया होगा क्योंकि लोगों को वह जरूरी लगता ही नहीं । हम सौन्दर्यशास्त्र भी पढ़ाते हैं, संगीत का रस लेना तथा विमर्श की तकनीकें भी सिखाते हैं । अब ये सारी चीजें मुझे बच्चों के लिए अत्यावश्यक दिखाई देती हैं, लेकिन आपको यह सब आम पाठ्यक्रमों में नहीं मिलेगा।

''शिक्षा के बारे में एक महत्त्वपूर्ण तथ्य यह है कि जब तक आप शिक्षित नहीं हो जाते, आप उसके महत्त्व को जान भी नहीं पाते । किसी ग्रामीण को यह बताने से कोई मतलब नहीं कि शिक्षा बहुत जरूरी है। कोई भी अशिक्षित व्यक्ति शिक्षा के वास्तविक महत्त्व को जान नहीं सकता।''

इसी तरह हम मिट्टी के बर्तन बनाना सिखाते हैं । कभी कभी लोग हमारा पॉटरी विभाग देख कर कहते हैं 'बहुत अच्छा है कि आप बच्चों को कुम्हार का काम भी सिखा रहे हैं ताकि वे इससे ही जीविकोपार्जन कर सकें।' मैं इस तरह का कुछ नहीं कर रहा । मुझे लगता है कि काम के जरिए सीखना बहुत जरूरी है । आपने मूर्तिकार एरिक गिल के बारे में सुना होगा, उन्होंने शिक्षा पर काफी लिखा है । एक बात जो उन्होंने कही वह यह कि हम बच्चों को चित्र के इस्तेमाल में कभी शिक्षित नहीं करते, सदैव विचार, अभ्यास और खेल आदि-आदि, पर चीजों का इस्तेमाल कभी नहीं । मेरे विचार से बच्चों को यह सीखना चाहिये कि पदार्थ कैसे अपना अनुशासन उपयोगकर्ता पर लगाता है। यह उस वस्तु का अपना अनुशासन होता है जो किसी बड़े के द्वारा बताए जाने वाले अनुशासन से बिल्कुल भिन्न होता है । अगर मैं अंग्रेजी में कोई गलती करता हूं तो तुम मुझे उसके बारे में बता सकती हो और मुझे दुरुस्त कर सकती हो। लेकिन अगर मैं चाक पर काम करते हुए गलती करूंगा तो मिट्टी ही मुझे बता देगी कि 'तुम मुझे ठीक तरह से काम में नहीं ले रहे हो।' अगर मैं किसी लकड़ी पर गलत तरीके से रंदा चलाने लगूंगा तो वह चिकनी होने की बजाय खुरदरी हो जाएगी । इस तरह लकड़ी स्वयं बालक को अपने अनुशासन में ढाल लेगी। यह बहुत अद्‌भुत चीज है इसके लिए किसी आरोपित अनुशासन की जरूरत ही नहीं है क्योंकि प्रत्येक वस्तु की अपनी प्रकृति होती है, अपना अनुशासन होता है ।

रोजलिंड : आपके विद्यार्थी जब इस स्कूल से निकलते हैं तो क्या उनमें मुख्यधारा में शामिल होने की महत्त्वाकांक्षा रहती है?

डेविड : हालांकि अभी तक पूरी तरह हमारे स्कूल से तैयार होकर कोई बच्चा नहीं निकला है । हमारे पास एक लड़का आया था जिसने हाल ही बी.ए. किया है । वह गांव के उन लोगों में से था जो पढ़ाई छोड़ देते हैं क्योंकि वह पी.यू.सी. की परीक्षा में सफल नहीं हो पाया था । तब हमने उससे कहा कि ठीक है । हम इस परीक्षा को उत्तीर्ण करने में तुम्हारी मदद करेंगे ।

हमारे यहां एक लड़का है जो प्रशासनिक सेवा में जाना चाहता है । हम हर सप्ताह एक बातचीत का दौर रखते हैं, इसमें बच्चों से उनकी भविष्य की योजनाओं के बारे में पूछते हैं, उनमें से अधिकांश ने कुछ तय नहीं किया है। मुझे अक्सर इस बारे में आक्रामक सवालों का सामना करना पड़ता है कि हम बच्चों को बहुत ऊंचे बौद्धिक स्तर की शिक्षा दे रहे हैं और उनकी अंग्रेजी बहुत अच्छी है - मेरे यहां बारह-तेरह साल के बच्चे शेक्सपीयर का सातवां नाटक पढ़ रहे हैं । यह बहुत ऊंचा स्तर है, द्विभाषी स्कूल के लिहाज से, यह कोई अंग्रेजी माध्यम स्कूल तो है नहीं। बच्चे शेक्सपीयर के दीवाने हैं, उन्हें यह संसार की बहुत महान कृति लगती है, इन दिनों हम ओथेलो पढ़ रहे हैं...

लोग मेरी आलोचना करते हैं, और कहते हैं कि 'तुम बच्चों को गांव से दूर कर रहे हो ।' (और इस तरह की टिप्पणी करने वाले हमेशा शहरी लोग ही होते हैं) । खैर, मैं कहता हूँ कि मैं लोगों के साथ छलकपट के लिए तो यहां नहीं हूं । मेरे यहां होने का एकमात्र उद्देश्य उनकी सामर्थ्य के अनुसार उन्हें बेहतरीन शिक्षा दे पाना है कि उनकी तमाम ऊर्जा तथा संभावनाओं को विकसित होने का मौका मिले- वे सोच सकें, महसूस कर सकें, स्नेहपूर्ण संबंध बना सकें, चीजों को समझ सकें, कह सकें, स्वयं को अभिव्यक्त कर सकें, वस्तुओं का उपयोग करना जान सकें, पर्यावरण को समझ सकें, शोषण के मायने समझ सकें तथा और भी बहुत सारी चीजें हैं जिन्हें वे जान-समझ सकें । इसके बाद वे क्या करते हैं उसमें मेरा कोई दखल नहीं । मैं उनसे नहीं कहूंगा कि उन्हें गांव में रहकर दूसरों की मदद करनी चाहिए । अगर वे ऐसा करना चाहते हैं, तो करें । अगर वे किसी बड़े शहर में जाना और चित्रकार बनना चाहते हैं, तो वह भी ठीक है । मैं उन्हें यह बताने के लिए नहीं हूँ कि वे क्या करें ।

रोजलिंड : *क्या ग्रामीण बच्चों के लिए एक अच्छा पाठ्यक्रम तैयार करने के पीछे आपका उद्देश्य यह है कि उन्हें अच्छा रोजगार मिल सके ?*

डेविड : मेरे लिए ग्रामीण पाठयक्रम का कोई मतलब नहीं, यह सब बकवास है जिसे उन पांच प्रतिशत शहरी सम्भ्रान्त लोगों ने फैलाया है जो देश की सत्ता पर काबिज हैं, जिनका शिक्षा प्रणाली पर नियन्त्रण है और मैं यहां तक भी कहूंगा कि ये लोग ही ग्रामीण आबादी को शिक्षा से महरूम भी रखना चाहते हैं । तीन महीने पहले दिल्ली से एक अध्ययन प्रकाशित किया गया था जिसके अनुसार देशभर में 65 प्रतिशत बच्चे पांचवी कक्षा के बाद पढ़ाई छोड़ देते हैं।

मुझे लगता है कि यह संख्या लगातार बढ़ती ही जाएगी । आप देखेंगे कि शिक्षा का पाठ्यक्रम ही इन पांच प्रतिशत शहरी सम्भ्रान्त वर्ग को ध्यान में रख कर तैयार नहीं किया जाता, बल्कि सारे संसाधन भी इसी वर्ग को समर्पित हैं। हमारे ग्रामीण विद्यालयों में दो सौ बच्चों पर एक शिक्षक की नियुक्ति होती है । कितना हास्यास्पद है कि हमारे स्थानीय हाई स्कूल का सैकण्डरी की परीक्षा का परिणाम मात्र चार प्रतिशत रहता है । आप कल्पना भी नहीं कर सकते ! जो बच्चे दस साल तक प्रतिदिन तीन मील चलकर स्कूल आते रहे हैं, और अंत में असफल हो जाते हैं।

रोजलिंड : *लेकिन आप हर गांव में एक डेविड ऑसबर्रो के होने की कल्पना तो कर नहीं सकते ? या कर सकते हैं ? यहां तक कि जिस तरह की व्यवस्था आपने कायम की है उसको जारी रखने के लिए भी आपको असाधारण रूप से योग्य लोगों की जरूरत पड़ेगी ।*

डेविड : इस स्कूल के समानान्तर हम बच्चों के लिए चार और स्कूल संचालित कर रहे हैं - वहीं मैं एक छोटा शिक्षक प्रशिक्षण स्कूल भी संचालित कर रहा हूँ । और जब कभी भी मुझे ऐसे प्रतिबद्ध युवा लोग मिलते हैं जो इस तरह का स्कूल शुरू करने के प्रति उत्सुकता रखते हों तो मैं उनके बी.ए. अथवा एम.ए. कर लेने पर, (कम से कम बी.ए. की अपेक्षा तो मैं भी रखता ही हूं।), उन्हें दो साल का प्रशिक्षण देता हूँ जिसका उद्देश्य यह होता है कि वे कम से कम दसवीं तक के सभी विषय पढ़ाने की स्थिति में पहुंच जायें। तब वे अपना स्कूल शुरू करते हैं । फिलहाल हमारे ऐसे चार स्कूल चल रहे हैं, सभी ग्रामीण क्षेत्रों में हैं और प्रत्येक में पन्द्रह से पच्चीस तक बच्चे पढ़ रहे हैं। ऐसे प्रशिक्षित लोगों द्वारा चलाए जाने वाले स्कूल भी अच्छा काम कर रहे हैं । इसलिए मुझे लगता है कि यह सब सीखा और सिखाया जा सकता है।

रोजलिंड : *बेशक । मोबाइल क्रेचेज द्वारा आयोजित प्रशिक्षण कार्यक्रमों को देखने का कुछ अनुभव मुझे है। वहां कम पढ़े लिखे लोगों का चयन कर लिया जाता है और फिर उनका सघन प्रशिक्षण किया जाता है। फिर लगातार निगरानी रखी जाती है । जाहिर है इस सब में बहुत भारी मदद करनी पड़ती है - पर्यवेक्षक व प्रशिक्षक अनुपात भी इस सब में बहुत अधिक होता है ।*

डेविड : यह इसलिए हो रहा है कि वहां ऐसे लोगों को लिया जा रहा है जिन्हें अशिक्षित कहा जा सकता है क्योंकि उन्हें अपने कार्यक्षेत्र के आधारभूत दर्शन की भी जानकारी नहीं होती । इसलिए ही उन पर लगातार नजर रखने की भी जरूरत होती है । वे सिर्फ तकनीक को सीख लेते हैं और फिर चाहे वह उपयुक्त हो या नहीं, वे इसमें फर्क करने की कोशिश भी नहीं करते और उसे काम में लेते चले जाते हैं, वे उसके मूल विचार तक तो पहुंच ही नहीं पाते,

बस उसकी तकनीक में ही उलझे रहते हैं । यह भी इसलिए कि उन्हें सिर्फ तकनीक मिली है, दर्शन नहीं ।

रोजलिंड : *तो फिर यह मानिए, आपको इस तरह का प्रशिक्षण देने के लिए एक विशेष किस्म की प्रतिभा से सम्पन्न लोगों की जरूरत रहती है ?*

डेविड : बिल्कुल ठीक । इसलिए न्यूनतम शिक्षा जरूरी है- कम से कम बी. ए. (ऐसा नहीं है कि बी.ए. कर लेने वालों को शिक्षित कहा ही जा सकता है ?) तब हम उन्हें ऐसा वातावरण उपलब्ध कराते हैं जिसमें वे यह जान सकें कि कैसे पढ़ाया जाए ? हमारा लक्ष्य उन्हें यह सिखाना है कि कैसे सिखाया जाए ? इसके लिए उनके सामने एक स्कूल होना चाहिए जहां वे स्वयं भी पढ़ा सकें ।

बिना स्कूल के शिक्षक प्रशिक्षण स्कूल का विचार एकदम हास्यास्पद है । यह कुछ उसी तरह की बात होगी जैसे एक बच्चे को बिना चाक के बर्तन बनाना सिखाने की कोशिश की जाए। लेकिन हमारे देश के सभी शिक्षक प्रशिक्षण संस्थान बिना स्कूल के ही चलते हैं, ऐसे प्रशिक्षण संस्थानों की सफलता हमेशा संदिग्ध रहती है । अगर आप शिक्षकों को प्रशिक्षण दे रहे हैं तो आपको बच्चों की जरूरत तो होगी ही । तो एक स्कूल सचमुच चलता है जहां मेरे प्रशिशु शिक्षक लगभग 800 घंटे पढ़ाने का अनुभव प्राप्त करते हैं । वहां वास्तव में आपको कुछ परिणाम मिलते हैं । कम से कम वे कक्षा को नियंत्रण में रखना सीख जाते हैं और बच्चों में रुचि पैदा कर सकते हैं । इसके अलावा वे कार्यशाला में जाते हैं । पढ़ने के लिए उनके पास एक बेहतर पुस्तकालय है । यहां कार्यशाला भी बहुत महत्वपूर्ण है, क्योंकि अधिकांश भारतीय युवाओं को हस्त-कौशल के कार्यों का अभ्यास नहीं होता, वे बढ़ईगिरी के बारे में न्यूनतम जानकारी भी नहीं रखते कि कैसे लकड़ी को काटा या जोड़ा जाता है, इसी तरह अन्य कामों के बारे में भी ... । अधिकांश लड़कियों को तो हाथ में औजार उठाने का भी अनुभव नहीं होता। वे दृश्य सामग्री बखूबी बना लेती हैं और खूब पढ़ती हैं । प्रत्येक सप्ताह मैं उन्हें चार काम सौंपता हूँ जिसकी कि उन्होंने पर्याप्त सैद्धांतिक जानकारी ले ली होती है । सप्ताह में दो सेमिनार होते हैं जिनमें हम शिक्षा के दर्शन पर चर्चा करते हैं या पढ़ने के दौरान जो मुश्किलें उन्हें आती हैं, उनके बारे में चर्चा करते हैं । सामान्य मनोविज्ञान, शिक्षा का मनोविज्ञान तथा शिक्षा का दर्शन भी उनके पाठ्यक्रम का हिस्सा है।

रोजलिंड : *मुझे लगता है, कुल मिलाकर आपकी दृष्टि किसी शिक्षा नियोजक की दृष्टि नहीं है क्योंकि वे समाज को किसकी जरूरत समझते है, इसके विश्लेषण से शुरू करते हैं और फिर शिक्षा तंत्र को उन जरूरतों के मुताबिक ढ़ालने का प्रयत्न करते हैं जिससे उन्हें पूरा किया जा सके । जैसे अगर आपको ज्यादा क्लर्कों की जरूरत है तो वे ज्यादा क्लर्क तैयार करेंगे, इंजीनियरों की तो इंजीनियर... और सिलसिला इसी तरह चलता रहता है ।*

डेविड : सही कहा । हम पाते हैं कि शिक्षा नियोजकों की कोई कमी नहीं है । बल्कि भारत में कितने ही सालों से शिक्षित लोग क्लर्क बन रहे हैं और आज भी शिक्षा के नीति-निर्माता इसी तरह लोगों को संचालित कर रहे हैं । अगर आपको ज्यादा वैज्ञानिक चाहिए, आप ज्यादा पैसा दीजिए और देखिए कितने ही लोग वैज्ञानिक बनने की इच्छा रखने लगेंगे।

रोजलिंड : *लेकिन क्या लोक शिक्षा का विचार ही लोगों को बरगलाने का नहीं दिखता ?*

डेविड : आज के समय हम 95 प्रतिशत आबादी के साथ यही छल कर रहे हैं । इसका अहम् कारण तो यही है कि हमारा पाठ्यक्रम पांच प्रतिशत संभ्रान्त वर्ग को ध्यान में रखकर तैयार किया जाता है, उनके बच्चों को फायदा पहुंचाने के लिए । इसकी सारी योजना ही उन लोगों को ध्यान में रखकर बनाई गई है जो विश्वविद्यालय तक जाते हैं । आप किसी साधारण स्कूल का विज्ञान का पाठ्यक्रम उठाकर देखिए, यह उन्हीं अपेक्षाओं को ध्यान में रखकर तैयार किया जाता है जो विश्वविद्यालय जाने वाले छात्र से की जाती हैं । किसी औसत ग्रामीण शिक्षक के लिए उसे पढ़ा पाना बहुत मुश्किल रहता है, और यही स्थिति ग्रामीण बच्चों की भी है । अंतत: वे पढ़ाई बीच में ही छोड़ जाते हैं, जो कि बहुत सुविधाजनक भी है, क्योंकि हम नहीं चाहते कि इसी व्यवस्था में वे लगातार हमारे साथ- साथ चल सकें।

रोजलिंड : *लोक शिक्षा की आप ऐसी परिकल्पना कैसे कर सकते हैं कि पढ़ाई बीच में छोड़ने वाले ऐसा न कर पाएं । आप*

अपने ही स्कूल को लें । इसे विशेष प्रतिभा-संपन्न लोग संचालित करते हैं । ऐसा तो लगता नहीं कि जिस बड़े पैमाने पर इसकी जरूरत है, उस पर यह प्रणाली व्यावहारिक साबित हो पाएगी ।

डेविड : नहीं, हमारा स्कूल व्यावहारिक है । मैने हाल ही अपने एक मित्र की पत्रिका के लिए एक लेख लिखा है जिसमें इस बात को बहुत साफ-साफ रेखांकित किया गया है कि जब तक शिक्षा नियोजक इन सारी समस्याओं पर ठीक ढंग से सोचने नहीं लगेंगे तब तक कुछ नहीं किया जा सकता । यहां एक तरह का दोहरा सोच देखने में आता है। जो लोग शीर्ष पर बैठे हैं वे सोचते हैं कि बहुत कुछ हो रहा है, पर वास्तव में वह हो नहीं रहा । वे सोचते हैं कि पाठयक्रम बहुत अच्छा है पर उसे ठीक से व्यवहार में नहीं लाया जा रहा ।

अगर आप हमारे स्थानीय कालेज में जाएंगे, जो 15 मील की दूरी पर है, आप देखेंगे कि कुछ लोगों ने वैकल्पिक विषय अंग्रेजी लिया है । उनके पाठ्यक्रम में कुछ पुस्तकें हैं, मान लीजिए कि 'रिचर्ड-थर्ड, और 'द टेल आफ टू सिटीज' हैं । कोई विद्यार्थी इन पुस्तकों को नहीं पढ़ेगा । पढ़ना तो दूर वे उन्हें खरीद कर भी नहीं लाएंगे। वे इन पुस्तकों के बारे में कुछ निबन्ध याद कर लेंगे और परीक्षा में वही लिख आएंगे । अब जो लोग पाठ्यक्रम बनाते हैं; परीक्षा लेते हैं और जो पढ़ाते हैं, वे सब खुश हैं कि छात्र साहित्य पढ़ रहे हैं जबकि वास्तव में ऐसा कुछ हो ही नहीं पा रहा। (हंसते हैं)

रोजलिंड : *आप की राय में शिक्षा नियोजकों को क्या करना चाहिए?*

डेविड : जाहिर तौर पर बहुत सारी चीजें हैं जो की ही जानी चाहिएं। मिसाल के तौर पर,बहुत सारे लोग दसवीं की परीक्षा में अनुत्तीर्ण रहते हैं । अब इस स्थिति से बचने का एक तरीका तो यह हो सकता है कि एक ऐसी नीति निर्धारित की जाए जिसके तहत विद्यार्थी विभिन्न स्तर पर स्वेच्छा से कितने ही ज्यादा या कम विषय लेने के लिए स्वतंत्र हों - जैसे कि आप चाहें तो प्रारंभिक गणित लें और चाहे तो उन्नत गणित । इन विषयों में ग्रेड दिए जा सकते हैं और एक बच्चा जब विद्यालय स्तर की शिक्षा पूरी करे, उसके बाद चाहे तो वह तीन विषय ले या पांच अथवा दो। इसका अभिप्राय यह हुआ कि यदि कोई छात्र विश्वविद्यालय स्तर पर भौतिकी, रसायन शास्त्र और गणित विषय पढ़ना चाहे तो वह सैकेण्डरी स्तर पर उन्नत गणित, भौतिकी और रसायन विषय ले सकता है। अगर किसी व्यक्ति की ऐसी कोई महत्त्वाकांक्षा न हो और शायद बहुत ज्यादा प्रतिभाशाली भी न हो, तो वह प्रारंभिक अंग्रेजी, प्रारंभिक तेलुगु, प्रारंभिक गणित और प्रारंभिक पर्यावरण शिक्षा जैसे विषय चुन सकता है। ऐसे में उसे चार सी ग्रेड मिल सकते हैं।

''हमारे स्कूल में दर्शन पढ़ाया जाता है, क्योंकि मेरे विचार में बच्चों के लिए दर्शन को जानना बेहद उपयोगी हो सकता है । हम सौन्दर्यशास्त्र भी पढ़ाते हैं, संगीत का रस लेना तथा विमर्श की तकनीकें भी सिखाते हैं । अब ये सारी चीजें मुझे बच्चों के लिए अत्यावश्यक दिखाई देती हैं, लेकिन आपको यह सब आम पाठ्यक्रमों में नहीं मिलेगा।''

अब यदि सरकार को चपरासियों की जरूरत है तो उसकी वांछित योग्यता चार सी ग्रेड हो सकती है, किसी अन्य काम के लिए चार बी अथवा युनिवर्सिटी को किसी कार्य के लिए तीन या पांच या दस ए ग्रेड वालों की जरूरत हो सकती है । इसका अर्थ हुआ कि सब पास होंगे, लेकिन अलग-अलग स्तर पर । ऐसे में किसी को नियुक्ति देते समय आपको यह नहीं पूछना होगा कि क्या 'तुमने दसवीं की परीक्षा उत्तीर्ण की है ? बल्कि आप पूछेंगे कि 'तुमने कौनसा ग्रेड पाया है।' और प्रत्याशी बताएगा कि 'मैं लिख और पढ़ सकता हूँ और मुझे तेलुगु तथा गणित में बी ग्रेड मिले हैं,' और आपका जवाब होगा 'बहुत अच्छा। अब तुम हमारे संस्थान में एक क्लर्क के तौर पर काम कर सकते हो ।' अभी सरकार चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी के लिए विज्ञापन निकालती है कि वह दसवीं कक्षा उत्तीर्ण हो क्योंकि आपको

लिख-पढ़ सके, ऐसा व्यक्ति चाहिए। अब आपको पढ़ने की योग्यता रखने वाले लोग मिल जाएंगे । लेकिन ईश्वर के लिए आप उससे विज्ञान जानने की अपेक्षा तो मत रखियेगा ।

मेरी पौत्री हैस्टिंग्स तकनीकी कालेज में जाना चाहती है और इसके लिए वांछित योग्यता 4 सी ग्रेड है, अब आप देखिए चार सी का मतलब हुआ-चार विषयों में सफलता, किन्हीं भी चार विषयों में। अब यदि वह विश्वविद्यालय में जाना चाहती तो उससे अधिक अहर्ताओं की मांग होती ओर वह भी आवश्यकतानुसार विशेष विषयों में । लेकिन हमारे यहां प्रत्येक बच्चे को दसवीं के सभी विषयों में एक साथ उत्तीर्ण होना जरूरी है । और यह सभी विषय बहुत ऊंचे स्तर के हैं क्योंकि इनकी रूपरेखा पीयूसी स्तर के लिए वांछित योग्यता को ध्यान में रख कर तैयार की गई है। पीयूसी का अपना स्तर इसलिए ऊंचा है क्योंकि वह विश्वविद्यालय स्तर को ध्यान में रखकर चलता है । यही कारण है कि बहुत सारे बच्चे फेल हो जाते हैं ।

रोजलिंड : *मुझे कुछ ऐसी जानकारी है कि आप ने गांव में अपने स्कूल के अलावा एक प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र भी चलाया हैं ।*

डेविड : नहीं, इस तरह का तो कुछ नहीं हैं । एक समय हमने ऐसी कोशिश की थी कि कुछ बच्चों के अभिभावक भी शिक्षा ग्रहण करने के लिए आएं । लेकिन अनेक कारणों से यह संभव नहीं हो पाया । बहुत सारे अभिभावकों ने इसे छोड़ दिया क्योंकि इनके काम के साथ उन्हें यह बड़ा बेमेल लगता था, हमारे लिए भी यह विकट स्थिति थी कि कैसे एक ऐसा उपयुक्त समय निर्धारित करें, जब वे अन्य सारे काम छोड़ कर यहां आएं । अंतत: हमने यह इरादा ही छोड़ दिया। लेकिन यह तो एक छोटी सी शुरूआत मात्र थी । प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र जैसी कोई बात इसमें नहीं रही ।

प्रौढ़ शिक्षा के बारे में मैं बहुत आशान्वित नहीं हूं, प्रौढ़ शिक्षा से जुड़े बहुत से लोगों से मेरी अक्सर मुलाकात होती है और मैं उनसे पूछा करता हूँ कि वे क्या और क्यों कर रहे हैं और इस काम के पीछे का विचार क्या है ? मुझे मुश्किल से ही कोई ठीक-ठाक जवाब मिल पाता है, वे कहेंगे कि ''हम गांवों में जाकर प्रौढ़ लोगों को पढ़ना सिखाते हैं ।'' 'क्यों ?' ''क्योंकि पढ़ना उनके लिए अच्छा है ।''

रोजलिंड : *संभवत: उन्हें लगता हो कि इससे उन्हें अपने हालात पर पकड़ बनाने में थोड़ी और सहायता मिल जाएगी। गॉलब्रेथ का यही तो मानना है ?*

डेविड : मेरे विचार में सिर्फ पढ़ने की क्षमता अर्जित कर लेने का कोई महत्त्व नहीं है, महत्त्वपूर्ण है शिक्षित होना। प्रौढ़ शिक्षा का महत्त्व तभी है । शिक्षा की क्या दशा है, इस लिहाज से देखें तो यह विकट समस्या है - यानि कौन, किसे, कहां और कैसे पढ़ाने जाता है, तुम यह सब जानती- समझती हो । शिक्षा एक लम्बे समय तक चलने वाला काम है, खासतौर से प्रौढ़ों, तिस पर भी ग्रामीणों के लिए।

रोजलिंड : *दिल्ली में एक खुला विद्यालय शुरू किया गया है । इसे नाम दिया गया है - बीचमें स्कूल छोड़ गये लोगों के लिए।*

डेविड : मुझे इस बारे में जानकारी नहीं है । लेकिन मैं बड़ी उम्र के लोगों के बारे में सोच रहा हूं । यह एक बात है । दूसरी बात है उन्हें शिक्षित किया जाएगा तो उसमें साक्षरता भी निहित होगी । ऐसे में मुझसे यह पूछा जा सकता है कि उन्हें क्या पढ़ना चाहिए ? जनसंचार के सर्वाधिक प्रमुख दो माध्यम हैं - अखबार और रेडियो । तब हम फिर उसी सम्भ्रान्तता के पुराने चक्कर में फंस जाते हैं, क्योंकि एक औसत ग्रामीण व्यक्ति रेडियो पर समाचार सुनकर भी समझ नहीं सकता । पढ़ लेता तो भी नहीं समझ पाता । वह अखबार को भी नहीं समझ सकता । अगर वे कन्नड़, तेलुगु या हिन्दी में भी समाचार सुनें तो वे समझ नहीं पाएंगे । हमारे देश में कितने रेडियो होंगे, वे सभी फिल्मी गाने सुनते हैं, वे समाचार सुनते ही नहीं क्योंकि वे उन्हें समझ नहीं सकते। यही स्थिति समाचार पत्रों की है । अगर मैं तेलुगु का एक समाचार भी पढ़कर सुनाऊं तो मेरी बावर्चिन उसका एक शब्द भी नहीं समझ सकती।

रोजलिंड : *क्या आपको लगता है कि आपके बच्चे अपने आस-पास के माहौल के प्रति ज्यादा जागरूक हैं - और वे इसमें परिवर्तन लाने के लिए अपनी भूमिका के बारे में सोच सकते हैं ?*

डेविड : बेशक । क्योंकि वे शोषणकारी व्यवस्था के बारे में ज्यादा से ज्यादा जान रहे हैं । इसे एक उदाहरण से समझा जा सकता है कि सरकार आवास निर्माण करने के लिए कुछ ऋण देती है । लेकिन कैसे ग्रामीणों को उस ऋण का 20 प्रतिशत तक हिस्सा उन लोगों को सौंप देना पड़ता है जो इन कागजात पर दस्तखत करते हैं । एक हजार रुपये के एक ऋण में 200 रुपये तक यूं ही निकल जाते हैं । हम जानते हैं कि ऐसी बातें कितनी आम हो गई हैं लेकिन बच्चे इनके बारे में जागरूक हो रहे हैं । पुरानी पीढ़ी के ग्रामीणों के सोचने समझने पर धर्म बहुत हावी रहता था, नए लोग इसके असर से मुक्त हो रहे हैं ।

रोजलिंड : *इन मामलों में क्या बच्चों तथा अभिभावकों के बीच परेशानियां भी पैदा हुई हैं ?*

डेविड : वे तो होनी ही हैं । जैसे ही आप एक बच्चे को शिक्षित करना शुरू करते हैं, वह गांव के माहौल से तथा अपने उन अभिभावकों से भी दूर होने लगता है जिनके लिए गांव ही पूरी दुनिया है । वहीं एक बच्चे का संसार अतीत में मोहनजोदड़ो तथा हड़प्पा तक तो वर्तमान में अमरीका, ग्रीनलैण्ड और तमाम दुनिया तक विस्तार पाने लगता है। उसकी दुनिया उसके अभिभावकों के परिमंडल से बहुत अलग हो जाती है । चूंकि बच्चे धर्म, लिंग, शोषण, राजनीति तथा तमाम चीजों पर (स्कूल में) बातचीत करने लगते हैं तो वे गांव में प्रचलित अनेक धारणाओं तथा धार्मिक मान्यताओं आदि पर संदेह करने लगते हैं । इसलिए बच्चों और उनके अभिभावकों के बीच विवाद की स्थितियां उत्पन्न होने लगती हैं ।

रोजलिंड : *क्या उनमें से किसी ने बच्चों को विद्यालय आने से भी रोका है ?*

डेविड : नहीं, अब तक तो किसी ने नहीं । और जितने ज्यादा समय वे अपने बच्चों को मेरे साथ रहने देंगे, उनके लिए बच्चों को कुछ भी करने से रोकना उतना ही अधिक मुश्किल होता चला जाएगा। लड़कियां विवाह को टालने में सफलता पा रही हैं। यहां कुछ अठारह उन्नीस साल की लड़कियां हैं जिनकी संभवत: तीन साल पहले ही शादी हो गई होती लेकिन उन्होंने स्नातक होना तय कर रखा है । उन्होंने अपने लिए इतनी सफलता तो हासिल कर ली है ... बहुत सारे परिवर्तन आ रहे हैं । किस तरह के परिवर्तन आ रहे हैं, इस बारे में एक उदाहरण देख सकती हो कि जब मैंने स्कूल शुरू किया था, सभी अभिभावक प्रतिदिन अपने बच्चों को पीटा करते थे, अब सिर्फ एक ऐसा पिता है जो बच्चों को पीटता है लेकिन वह भी सिर्फ तब जब वह बहुत नशे में होता है। यह परिवर्तन का ही एक प्रमाण है । इस बारे में राय अलग-अलग हो सकती है कि यह ठीक है अथवा नहीं लेकिन परिवर्तन तो हो रहे हैं। किसी औसत पंद्रह साला लड़के की तुलना में परिवार में इन बच्चों की बात पर ज्यादा ध्यान दिया जाता है। अभिभावक उनसे समझदारी पूर्ण सलाह की अपेक्षा रखने लगे हैं और लड़के कोशिश करते हैं कि उनके माता-पिता बचत कर सकें, शराब कम पीयें, वे जमीन की व गांव की समस्याओं पर ध्यान दें, आदि ।

रोजलिंड : *शिक्षा के बारे में एक बात यह भी कही जा रही है कि जब तक इसके साथ भौतिक समृद्धि की उम्मीद जुड़ी न हो, लोग स्कूल जाना नहीं चाहते । क्या आपको अपने बच्चों के संदर्भ में यह सही लगता है ?*

डेविड : यह मैं मानता हूं कि कुछ मौके ऐसे आए जब मुझे भी कुछ अभिभावकों को, जबकि वे अपने बच्चों को बकरियां चराने भेजना चाहते थे, इस तरह के प्रलोभन देने पड़े कि यदि आपका बच्चा स्कूल जाएगा तो उसे अच्छी नौकरी मिल पाएगी और तब आपको इतनी मेहनत करने की जरूरत नहीं रहेगी । इस तरह के कुछ छोटे मोटे प्रलोभन तो मुझे भी देने पड़े, मैं मानता हूं । मुझे लगता है कि चूंकि वे स्वयं अशिक्षित हैं, उन्हें लगता है शिक्षा मात्र एक बेहतर जीवन स्तर प्राप्त करने का माध्यम भर हो सकती है ।

रोजलिंड : *लेकिन क्या उन्हें एक बेहतर जीवन की संभावना दिखने लगी है ? क्या बच्चे इस तरह से सोचने भी लगे हैं ?*

डेविड : बच्चों को संभावना दिखती है । मेरा ख्याल है, तुम्हारा सवाल अभिभावकों के बारे में था । यह बात तो उनकी तमाम गतिविधियों में झलकने लगी है । कला की किसी भी विधा को ले लो, उसके बारे में उनके अभिभावकों ने कभी सुना भी नहीं होगा, या शेक्सपीयर, या लकड़ी अथवा मिट्टी के साथ उनका काम करना, नाटक अथवा विभिन्न विचारों पर चर्चा करना, नए-नए बौद्धिक अनुभव प्राप्त करना । मुझे लगता है कि यह सब उन्हें पर्याप्त रोमांचक लगता है।

रोजलिंड : *आप शुरूआत से ही भाषाओं को जानने और पढ़ने पर बहुत जोर देते रहे हैं ।*

डेविड : हां, मेरे विचार में संवाद शिक्षा का बहुत महत्वपूर्ण अंग है । एक बच्चे को आप जब पढ़ना सिखा देते हैं, चीजों को कैसे जानना चाहिए यह सिखा देते हैं तो आपका काम पूरा हो जाता है । अब तीसरा काम बचा रहता है - उसे अधिक से अधिक जानने के लिए उत्साहित करना । असल चीज यही है, कोई भी वयस्क यदि पढ़ना जानता है, तथा और अधिक पढ़ने-सीखने-जानने की ललक उसमें है तो वह जो चाहे सीख सकता है ।

रोजलिंड : *क्या इसीलिए आप उन्हें अंग्रेजी सिखाते हैं ?*

डेविड : हां, कुछ हद तक । ज्यादातर मातृभाषा माध्यम वाले स्कूल अंग्रेजी पढ़ाते हैं लेकिन बच्चे कुछ खास सीख नहीं पाते क्योंकि शायद सप्ताह में अंग्रेजी की सिर्फ एक कक्षा होती है । अंग्रेजी में भूगोल, इतिहास, जीव विज्ञान, इलैक्ट्रानिक्स या किसी भी विषय की सैकड़ों पुस्तकें मिल जाएंगी । लेकिन तेलुगु या कन्नड में वे पुस्तकें उपलब्ध नहीं हो सकतीं। अत: जो बच्चा आसानी से अंग्रेजी पढ़ नहीं सकता वह, कम से कम मेरे विचार से तो; बहुत व्यापक शिक्षा प्राप्त नहीं कर सकता । क्योंकि पठन सामग्री उपलब्ध नहीं है । इसलिए मुझे लगा कि उन्हें अंग्रेजी जाननी ही चाहिए ।

दूसरी तरफ अंग्रेजी माध्यम स्कूलों में किसी भारतीय भाषा में बच्चों की सामर्थ्य विकसित नहीं की जाती, इसलिए ये बच्चे भारतीय संस्कृति की मुख्य धारा से कट जाते हैं । लेकिन वे पाश्चात्य संस्कृति को भी अपना नहीं पाते और वे हास्यास्पद किस्म की संस्कृति (ईनिड ब्लाइटन के उपन्यासों, पॉप संगीत आदि का प्रति रूप) में ढलते चले जाने के सिवा कुछ नहीं कर पाते ।

संस्कृतियों के आदान-प्रदान में भाषा की बड़ी जबरदस्त भूमिका होती है । जब तक बच्चे किसी भारतीय भाषा को नहीं सीखेंगे तब तक वे भारतीय संस्कृति को समझ भी नहीं सकते ।

रोजलिंड : *अंग्रेजी की आपकी अपनी पुस्तकें भी क्या आपको एक खास सांचे-ढांचे जैसी नहीं दिखतीं ?*

डेविड : इनके लिए बाजार को भी ध्यान में रखना पड़ता है, वर्ना न कोई उन्हें पढ़ेगा न स्कूलों में लागू की जाएंगी, और अगर किसी पुस्तक को कोई स्कूल लागू नहीं करता तो प्रकाशक उसे बाजार से निकाल बाहर कर देते हैं । मेरी पुस्तकें भी एक तरह का समझौता तो हैं ही। आप वैसी पुस्तक नहीं लिख सकते, जैसी आप लिखना चाहते हैं क्योंकि ऐसे उसे कोई खरीदेगा नहीं । एक बार मैंने अपने इच्छित तरीके से पुस्तकें लिखी: विज्ञान की पुस्तकें, लेकिन उनकी बाजार में विशेष मांग नहीं है । मुझे लगता है, इसका कारण यह है कि वे विज्ञान की सामान्य पुस्तकों से बहुत भिन्न हैं ।

रोजलिंड : *कैसे ?*

डेविड : जैसे कि उनमें कई प्रश्न खुले छोड़ दिए गए थे । आप जानते हैं कि साधारणत: विज्ञान की पुस्तकों में एक तरफ मेंढ़क का चित्र बना होगा और दूसरी तरफ बताया गया होगा कि मेंढ़क के चार टांगे होती हैं, एक जीभ होती है और वह कीट-पतंगों को खाता है । और पृष्ठ के पिछले भाग पर सवाल होंगे, एक मेंढ़क के ..... टांगे होती हैं । अब बच्चा खाली स्थान को भरकर खुश होगा जैसे उसने कोई बड़ा तीर मार लिया । और वह अगले पृष्ठ की तरफ बढ़ जाएगा। मेरी पुस्तकें इससे भिन्न हैं । उनमें बच्चों से चीजों को तलाश कर उनका अवलोकन करने और फिर उसे दर्ज करने को कहा जाता है। इसी तरह आगे बढ़ते हुए उनसे अपने अवलोकन अथवा अपने द्वारा दर्ज की गई बातों का विश्लेषण करने को कहा जाता है। विज्ञान में बहुत सारे पहलू होते हैं और उसमें बहुत ज्यादा विविधता की गुंजाइश रहती है । इन दिनों शिक्षा में सही उत्तर बताने को बहुत बड़ी बात मान लिया गया है । मेरी पुस्तकें इस अर्थ में अलग हैं कि उनमें सवालों को खुला छोड़ दिया गया है और वे सही उत्तर से ज्यादा महत्त्व खुली बहस को बढ़ावा देने को देती हैं ।

रोजलिंड : *पर इस तरह बातचीत के लिए तो कुशाग्र लोगों की जरूरत होगी ।*

डेविड : बच्चे बहुत कुशाग्र होते हैं । आप इन पर बच्चों से बातचीत कर सकते हैं ।

रोजलिंड : *तब तो आपके यहां शिक्षकों को भी इस बारे में बहुत संवेदनशील होना चाहिए ?*

डेविड : बिल्कुल । शिक्षक को संवेदनशील होना ही चाहिए । मेरे विचार से तो ये कुछ ऐसा ही कहना हुआ कि शिक्षक को भी शिक्षित होना चाहिये । वे शिक्षित नहीं है इसलिए ठीक से शिक्षा हो नहीं पा रही है ।

रोजलिंड : *तो क्या यही वजह नहीं है कि लोग मशीनों और वैसी ही अन्य चीजों की ओर मुड़ने लगे हैं ?*

डेविड : दिलचस्प खयाल है । पर सवाल सिर्फ शिक्षकों का नहीं है, विद्यार्थियों का है, खास तौर पर । दस करोड़ विद्यार्थी हैं, मेरे हिसाब से, आज के दिन भारत में ।

रोजलिंड : *रेडियो के बारे में आप क्या कहेंगे ?*

डेविड : असल बात तो यह है कि इन स्कूलों में या बच्चों के पास रेडियो है ही नहीं, एक बार मैं देश के एक बहुत बड़े नामी संस्थान में टी.वी. के महत्त्व पर आयोजित एक सेमिनार में गया था । मैंने टी.वी. के बारे में काफी कड़ी टिप्पणियां की थीं - कि टी.वी. शिक्षा में एक अच्छे सहायक की भूमिका मात्र निभा सकता है जबकि आपके पास एक मात्र टी.वी. स्टेशन दिल्ली में हो । हम यदि प्रत्येक कक्षा को दिन में एक घंटा भी दें तब भी दिन के कम से कम दस घंटे देने होंगे, ऐसे में बच्चे क्या करेंगे ? इसलिए यह एक संवर्द्धन कार्यक्रम से ज्यादा कुछ नहीं हो सकता।

ठीक है कि आप ध्रुवीय रीछों की या पानी की सतह के नीचे की दृश्यावलियों की बहुत अच्छी तस्वीरें ला सकते हैं और वे यह सोचते हैं कि वे बड़े जबरदस्त कार्यक्रम दिखा रहे हैं । लेकिन आप उनसे सीख कुछ नहीं सकते क्योंकि यह सब पूर्णत: एकतरफा होता है। सीखना दुतरफा होता है (शिक्षार्थी की सक्रिय भागीदारी जरूरी होती है)। टी.वी. एकतरफा माध्यम है उसमें आपकी भागीदारी नहीं हो सकती । यही इसका खतरा है । आपको लगता है आप सीख रहे हैं लेकिन आप सीख कुछ भी नहीं रहे होते।

रोजलिंड : डेविड, मुझे लगता है कि पर्यावरण की आपकी अवधारणा भी अधिकांश लोगों की अवधारणा से कहीं अधिक व्यापक है, जिसे पर्यावरण अध्ययन कहा जाता है, आपने इस पर भी पुस्तकें लिखी हैं ?

डेविड : मैंने पर्यावरण संबंधी कुछ पुस्तकें भी बच्चों के लिए लिखी हैं लेकिन उनकी भी बाजार में ज्यादा मांग नहीं है क्योंकि उनमें बच्चों से पर्यावरण के अध्ययन की अपेक्षा की गई है जबकि शिक्षक नहीं चाहते कि बच्चे पर्यावरण का अध्ययन करें । वे कुल मिलाकर इतना ही चाहते हैं कि बच्चे पूरे मन से पुस्तकों को याद कर लें । यहां तक कि बहुत अच्छे माने जाने वाले शिक्षक भी किसी पाठ्यपुस्तक का नाश करके रख देते हैं । दो साल पहले मैं दिल्ली आया तो मेरे एक दोस्त ने बताया कि उसकी एक मित्र स्कूल में पढ़ाती हैं, और वहां मेरी पुस्तकें ही लगी हुई हैं तो वह मुझसे बात करना चाहती हैं । मैंने कहा ठीक है उन्हें लिवा लाओ । वह नाश्ते पर आईं, तब मैंने पूछा कि पहले तो आप यह बताइए कि आप स्कूल में क्या करती हैं ?

मेरी पुस्तक में पेड़ों के बारे में एक अध्याय है जिसमें कहा गया है कि ''स्कूल के रास्ते में आप कितने तरह के पेड़ों को देखते हैं ? क्या आप उनमें से किसी पेड़ का नाम जानते है ? क्या आपको उन पर पत्ते दिखाई देते हैं ? आप उन पत्तों के चित्र अपनी पुस्तक में बना कर देखिए ?' आदि। मैंने उनसे कहा कि आप मुझे ठीक-ठीक बताइए कि कक्षा को आप कैसे पढ़ाती हैं ?' तब उन्होंने जवाब दिया । मैं किताब लेकर पढ़ती हूँ , 'पेड़' । आप कितनी तरह के पेड़ देखते हैं ? इसके बाद मैं श्यामपट्ट पर पेड़ों के नाम लिख देती हूँ और बच्चे उन्हें अपनी कॉपी में उतार लेते हैं और उन्हें याद कर लेते हैं । और अगले दिन मैं पूछती हूं कि बताइए आपने कौन कौन से पेड़ देखे थे ? विश्वास नहीं होता । यह स्थिति तो दिल्ली के प्रतिष्ठित स्कूल की है। आप सोच सकते हैं कि दूसरे स्कूलों में क्या होता होगा। पर्यावरण शिक्षा बहुत जरूरी है लेकिन शहरों में कोई पर्यावरण का अध्ययन नहीं करता । यहां तक कि आप उनसे पूछें कि रिक्शा पर जाते हुए उन्होंने कौन-कौन सी दूकानें देखी, तब भी वे शायद जवाब न दे पाएं। वे शहरी वातावरण के बारे में कुछ नहीं जानते, न किसी और चीज के बारे में और न ही ग्रामीण वातावरण के बारे में ।

रोजलिंड : *कुल मिलाकर हालात बहुत भयावह दिखाई देते हैं। आप सकारात्मक हस्तक्षेप की क्या गुंजाइश देखते हैं ?*

डेविड : मैं नहीं जानता कि इसका जवाब क्या हो सकता है । मैं सिर्फ इतना कह सकता हूं कि मैं अपने छोटे से गांव में बैठ कर जिसे मैं अच्छी शिक्षा समझता हूँ उसके लिए प्रयास करता रहूंगा । कुछ बच्चे जिन्हें इस प्रकार की खुली शिक्षा मिली होगी - जहां भय न हो, प्रतिस्पर्धा न हो, वे बहुत जागरूक हों आदि - शायद इन समस्याओं के हल ढूंढ़ सकें, जिनके हल मैं अपनी पृष्ठभूमि और अपने अनुबंधनों के कारण नहीं ढूंढ़ सकता । ◆